सटक सीताराम



प्रो० संसारचन्द्र एम० ए०

सटक सीताराम

लेखक

प्रो० संसारचन्द्र एम० ए०

ओरिएण्टल बुक डिपो

१७०४, नई सड़क, दिल्ली।

प्रकाशक
ओरिएण्टल बुक डिपो
१७०४, नई सड़क, दिल्ली

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली



सटक सीताराम

दो शब्द

हास्य क्या है ? मज़ाक किसे कहते हैं ? इस सम्बन्ध में प्राय: मतभेद पाया जाता है । एक वर्ग की मान्यता है कि रचना में हास्य अथवा मज़ाक का निर्वाह एक सामान्य कला है । साहित्यिकों की अधिकांश संख्या इससे सहमत नहीं । इनका विश्वास है कि मज़ाक करना मज़ाक नहीं है । कौन जाने किसका दृष्टिकोण पूर्णतया संगत है और किसकी धारणा भ्रान्त अथवा निर्मूल है । मैं तो इतना जानता हूँ कि मज़ाक वास्तव में एक दोधारी तलवार है । यदि इसका निशाना चूक जाय तो मज़ाक करनेवाला स्वयं मज़ाक का पात्र बन जाता है ।

यह प्रश्न विचारणीय है कि किसी रचना में हास्य एवं व्यंग्य का उद्रेक करने के लिए किन-किन साधनों की अवाश्यकता होती है । इसके लिए किस प्रकार का वातावरण तथा परि-स्थितियाँ अपेक्षित हैं ? लेखक की साहित्यसाधना का स्तर कैसा होना चाहिये ? इन सब बातों का संतुलित विवेचन अत्यन्त विशद एवं गम्भीर है । सामान्य रूप से जैसा कि मैं समझ सका हूँ, ऐसे लेखक के लिए शान्त मन, स्वस्थ दिमाग़ तथा अच्छे हाज़मे की आवश्यकता होती है । जहाँ तक मेरा वैयक्तिक सम्बन्ध है, पहली दोनों चीज़ें तो पश्चिमी पंजाब में ही छोड़ आया हूँ । हाज़मे का हुलिया यहाँ आकर बिगड़ गया है । भला इस मिला-वट के दौर में हाज़मा ठीक भी कैसे रह सकता है ! ढूंढने पर

भी कोई चीज़ अपने शुद्ध रूप में नहीं मिलती। दूध को ही लीजिये। हमारे यहाँ दूध को सबसे सात्विक एवं पवित्र माना जाता है। खेद है कि आजकल बाज़ार में जो दूध विकता है, उसको दूध कहना दूध का मुँह चिढ़ाना है। चूल्हे में लकड़ियों के साथ स्वयं हलवाई भी यदि भस्म हो जाय, तो भी इस पर मलाई नहीं जमती। मैं तो भूले से भी इसका सेवन नहीं करता। यदि कभी ऐसा अपराध कर भी लूँ, तो मेदे और दूध में भयानक युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। दूध अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर मेदे मे जगह बनाना चाहता है और मेदा इसे सर्वथा आगन्तुक एवं विषम पदार्थ समझकर बाहर फेंकने का प्रयत्न करता है। इन दोनों की कशमकश में मेरी नाक में दम हो जाता है और मैं पेट पकड़कर बैठ जाता हूँ।

ऐसे निराश वातावरण में मैंने हास्य-विनोदात्मक निबन्ध लिखने का साहस किया है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी मे निबन्ध-साहित्य का विशेष महत्त्व है, परन्तु इस प्रकार के निबन्धो का बहुत कम प्रचलन है। हमारा निबन्ध-साहित्य निर्बन्ध न होकर परिबन्ध है। इसमें बौद्धिक पक्ष को ही प्रधानता मिलती है। साहित्य का यह माध्यम प्राय: कल्पनातत्त्वों के समुचित विकास के लिए उर्वर नहीं समझा जाता। यही कारण है कि ऐसा साहित्य केवल ज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिए तथा चिन्तन एवं अनुभूति को उत्तेजित करने के लिए ही उपादेय होता है। इसमें हृदय की मृदुल तारों को झंकृत करने की अधिक स्फूर्ति नहीं होती। इसीलिए इसका अधिकांश उपयोग विद्वानों तक ही सीमित रहता है। इससे जनसाधारण की रुचि का यथेष्ट

परिष्कार सम्भव नहीं होता। आजकल तो अधिकांश निबन्ध-साहित्य आलोचना का ही सहायक बनकर रह गया है। वस्तुतः इससे निबन्ध-साहित्य की व्यापकता को आघात पहुँचता है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतेन्दुयुग में निबन्ध के वर्तमान स्वरूप का एकान्तिक अभाव था। उन निबन्धों में हृदयपक्ष की सजीवता एवं सरसता स्थान-स्थान पर झलकती है। द्विवेदी काल में भी निबन्ध का स्वरूप इतना गंभीर नहीं हुआ। आचार्य शुक्ल के समय से तो यह साहित्य इतना सारगर्भित एवं पांडित्यपूर्ण हो चला है कि इसमें मनोविनोद एवं ज़िन्दादिली के लिए बहुत कम अवकाश है। अब कुछ साहित्यिकों का ध्यान व्यंग्यात्मक निबन्धो की ओर अग्रसर हो रहा है जिनमें प्रभाकर माचवे, यशपाल तथा नामवरसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

यदि देखा जाय तो हास्यविनोद मनुष्य की सहज वृत्ति है। जीवन के व्यस्त कार्यव्यापार से ऊब जाने पर उसे घड़ी दो घड़ी इसी मज़ाक की भी इच्छा होती है। हास्यविनोद से शून्य जीवन सर्वथा रुक्ष एवं निष्प्राण सा रह जाता है। इसीलिए साहित्य मे भी हास्यविनोद के तत्त्वों का समावेश नितान्त अपेक्षित है। किसी भी देश एवं काल का साहित्य इसके बिना अधूरा है। ऋग्वेद जैसे प्राचीनतम ग्रन्थ में भी कहीं-कहीं सरल हास्य की मृदुल हिलोरें हृदय को झकझोर देती हैं। एक स्थान पर तो वेदपाठ करने वाले ब्रह्मचारियों को बरसाती मेंढक कहकर उनकी खूब खिल्ली उड़ाई गई है। अतः यह निर्विवाद है कि एक उत्कृष्ट साहित्यकार जहाँ मानव-हृदय में गहरी टीस उत्पन्न कर देता है,

वहाँ वह व्यंग्य एवं विनोद के छींटे बरसाकर हँसी में लोटपोट कर देना भी भलीभाँति जानता है।

इन्हीं विचारों ने लेखक को इस पुस्तक की रचना के लिए प्रेरित एवं बाध्य किया है। वस्तुतः ये निबन्ध मेरे जीवन के अवकाशक्षणों की देन हैं। इनके विषयों का चयन सामान्य जीवन से ही हुआ है। इनमें यथासंभव हास्य एवं विनोद की सामग्री जुटाने का प्रयास मिलेगा। जीवन के अनेक पहलुओं अथवा कार्यव्यापारों पर कहीं-कहीं चोट अथवा तनज का उपक्रम भी मिलेगा परन्तु लेखक की यह प्रवृत्ति किसी प्रकार के पक्षपात एवं अरुचि की प्रतिक्रिया नहीं है। उसका मुख्य उद्देश्य तो पाठक के मन में केवल गुदगुदी-सी पैदा करना एवं थोड़ी देर के लिए उसे जीवन के गम्भीर वातावरण से तटस्थ करना है। स्मरण रहे कि इस पुस्तक की सभी घटनाएँ एवं स्थल वा पात्र काल्पनिक हैं।जो कुछ भी किसी के सम्बन्ध में लिखा गया है, उसमें मेरा कोई 'मोटिव' नहीं है। यह तो मेरे धूमिल विचारों का अनर्गल प्रवाहमात्र ही समझना चाहिये। चिरकाल से इन बिखरे हुए मनोवेगों को मूर्त रूप देने की लालसा रह-रहकर बलवती होती थी जिसका सक्रिय परिणाम पुस्तकाकार हो रहा है। इस सम्बन्ध में मुझे श्री देवीदास जी से विशेष प्रेरणा मिलती रही जिसके लिये उनका आभार मानता हूँ। प्रकाशक महोदय श्री सन्त साहिब ने भी पुस्तक के प्रकाशन में सुरुचि एवं लगन का परिचय दिया है, इसलिए उनका भी धन्यवाद करता हूँ। अन्त में इस लघु प्रयास को विज्ञ पाठकों के

औदार्य तथा सहानुभूति पर छोड़ते हुए महाकवि कालिदास के शब्दों में ही अपने कथन की इतिश्री करता हूँ—

"परिहास विजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः।"

वसंत पंचमी, १९५८ संसारचन्द्र

अम्बाला छावनी

विषय-सूची



सटक सीताराम

